वर्षम् - ०२ अङ्कः - ०२ शोधज्योतिः
जनवरी-दिसम्बर, २०२० ISSN-2350-0700

षड्दर्शनसमुच्चय ग्रंथ एवं उसकी टीकाओं का समीक्षात्मक अध्ययन

शैलेश दतात्रेय पवार[१]

आचार्य हरिभद्र ने वि. सं. ७५७-८२७ के जीवनकाल में संस्कृत तथा प्राकृत भाषाओं में अनेक ग्रंथों की व टीकाग्रंथों की रचना की है। उन्हीं ग्रंथों में से एक ग्रंथ है 'षड्दर्शनसमुच्चय'। जैन परंपरा के अनुयायियों को सभी दर्शनों का सामान्य परिचय कराने के लिए हरिभद्रसूरि ने यह ग्रंथ लिखा होगा ऐसा प्रतीत होता है। षड्दर्शनसमुच्चय ग्रंथ में हरिभद्र ने बौद्ध, न्याय, सांख्य, जैन, वैशेषिक, मीमांसा तथा चार्वाक दर्शनों के देवता, प्रमेय व प्रमाणों का मात्र 87 कारिकाओं में परिचय दिया गया है। इन दर्शनों का विवेचन करते समय हरिभद्र ने किसी भी दर्शन का खण्डन या मण्डन नहीं किया है। ऐसा इस ग्रंथ की अंतिम पंक्ति से ज्ञात होता है- अभिधेयतात्पर्यार्थः पर्यालोच्यः सुबुद्धिभिः।२

षड्दर्शनसमुच्चय ग्रंथ पर कुल पाँच टीकाएँ उपलब्ध हैं। इनमें से कुछ प्रकाशित हैं, तो कुछ अप्रकाशित हैं, जिनका उल्लेख नीचे किया गया है-

१) लघुवृत्ति

यह षड्दर्शनसमुच्चय की सबसे प्राचीन टीका मानी जाती है। इसके कर्ता सोमतिलकसूरि है। इन्हें विद्यातिलक के नाम से भी जाना जाता है। इनका समय वि. सं. १३५५ से १४२४ का माना जाता है। सर्वप्रथम यह टीका ई. १९०५ में गोस्वामी श्री दोमोदरलाल शास्त्री द्वारा संपादित होकर चौखम्बा ग्रंथमाला में प्रकाशित हुई है परन्तु वहाँ इस लघुवृत्ति के कर्ता के रूप में मणिभद्र का उल्लेख प्राप्त होता है। जैनरत्नकोष और जैनग्रंथावली के सूचीपत्र में इस वृत्ति के कर्ता के रूप में सोमतिलकसूरि का निर्देश है।

---

[१] संस्कृत विभागाध्यक्ष, द कल्याणी स्कूल, मांजरी, पुणे - ४१२३०७

[२] षड्दशर्नसमुच्चय, कारिका-८७

२) तर्करहस्यदीपिका -

यह षड्दर्शनसमुच्चय पर लिखी गई दूसरी टीका है। इसके कर्ता आचार्य गुणरत्नसूरि है। इनका समय प्रायः वि. सं. १४०० से १४७५ का माना जाता है। तर्करहस्यदीपिका को बृहद्वृत्ति के नाम से भी जाना जाता है।

३) वाचक उदयसागरकृत अवचूरि -

इसकी पंचपाठी हस्तप्रत ला. द. विद्यामंदिर अहमदाबाद में संग्रहित है। इसके मध्य भाग में मूल कारिकाएँ लिखी है और चारों ओर अवचूरि लिखी है।

४) ब्रह्मशान्तिदासकृत अवचूर्णि -

इस टीका की चार-पाँच प्रतिलिपियाँ उपलब्ध हैं। इनमें से कुछ प्रतिलिपियों में ब्रह्म तो कुछ प्रतिलिपियों में शांतिदास ऐसे नामों का उल्लेख मिलता है। यह अवचूर्णि दो प्रकाशनों से प्रकाशित हो गई है, लेकिन वहाँ इसे अज्ञातकर्तृक कहा गया है।

५) बुद्धिविजयकृत विवरण -

ला. द. विद्यामंदिर अहमदाबाद में इसकी चार पत्रों वाली पांडुलिपि उपलब्ध है। इसका रचनाकाल वि. सं. १७२० का है। उपर्युक्त पाँच टीकाओँ में सोमतिलक की लघुवृत्ति तथा गुणरत्न की तर्करहस्यदीपिका विस्तृत रूप से लिखी गई टीकाएँ है । अन्य टीकाएँ संक्षेप में लिखी गई हैं। प्रस्तुत शोधपत्र में षड्दर्शनसमुच्चय पर लिखी गई सोमतिलक की लघुवृत्ति तथा गुणरत्न की तर्करहस्यदीपिका में उल्लेखित विवेचनों का आलोचनात्मक शैली में प्रस्तुतीकरण किया गया है। 'आज के समय में यह कह पाना बहुत कठिन है कि कौन सा दर्शन पहले का है और कौन सा बाद का'[१] प्रो.मैक्समूलर के इस कथन में पर्याप्त सत्य है। भारतीय दार्शनिक इतिहास में दर्शनों की छह संख्या कब निश्चित हुई, यह सिद्ध करने वाला कोई ठोस प्रमाण उपलब्ध नहीं है। षड्दर्शनों में कौनसे छह दर्शनों का समावेश होता है, इस विषय में भी एकमत नहीं दिखता है। सामान्यतः वैदिक दर्शनों के अनुयायी 'षड्दर्शन' शब्द से केवल सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्वमीमांसा तथा वेदान्त इन छह आस्तिक दर्शनों का ही ग्रहण करते हैं।

---

[१] The Six Systems of Indian Philosophy pp 88-92

हरिभद्र षड्दर्शनों में बौद्ध, न्याय, सांख्य, जैन, वैशेषिक और मीमांसा इन छह दर्शनों का समावेश किया है। जो आचार्य न्याय और वैशेषिक दर्शनों को एक ही समझते हैं, उनके अनुसार दर्शनों की संख्या पाँच ही हुई। तब दर्शनों की छह संख्या को पूर्ण करने के लिए हरिभद्र ने चार्वाकदर्शन का भी षड्दर्शन में समावेश किया है।[१] इससे यह सिद्ध होता है कि हरिभद्र ने बौद्ध और जैन दर्शनों को आस्तिक दर्शनों की सूची में रखा है।

हरिभद्र ने अपने षड्दर्शनसमुच्चय में योग और वेदान्त दर्शनों को स्थान नहीं दिया। इसके जैन विद्वान पं दलसुखभाई मालवणिया के अनुसार दो-तीन कारण हो सकते हैं, जो इस प्रकार हैं- उस काल में अन्य दर्शनों के समान वेदान्त ने पृथक् दर्शन के रूप में स्थान नहीं पाया था। वेदान्त का दर्शनों में स्थान आचार्य शंकर के भाष्य और उसकी भामती टीका के बाद प्राप्त हुआ हो। अन्य कारण वे यह देते हैं कि हरिभद्र के काल तक गुजरात-राजस्थान में वेदान्त की उतनी प्रतिष्ठा न हो। लेकिन ये कारण तर्कयुक्त नहीं लगते; क्योंकि हरिभद्र ने ही अपने 'शास्त्रवार्तासमुच्चय' नामक ग्रंथ में वेदान्त दर्शन का खण्डन किया है।

शंकराचार्य और हरिभद्र दोनों आठवीं शताब्दी ईसवी के हैं ऐसा इतिहासकारों को मान्य हो चुका है, यद्यपि परंपरा दर्शन को ईसापूर्व मानती है। समकालीन होने पर भारत के कोने में अद्वैत का डिण्डिम घोष करने वाले और चारों दिशाओं में मठों की स्थापना करने वाले दर्शन का ज्ञान ही हरिभद्र को न रहा हो, ऐसा नहीं कहा जा सकता। यदि एक क्षण के लिए मान भी लिया जाये कि शंकराचार्य हरिभद्र के जीवनान्त के बाद हुए तो भी हरिभद्र को ब्रह्मसूत्रकार व्यास को नहीं छोड़ना चाहिये था। यहाँ नहीं कहा जा सकता कि हरिभद्र जैमिनि और जैमिनीय मत से तो परिचित थे किन्तु व्यास, उनके मत तथा ग्रंथ से परिचित नहीं थे।

षड्दर्शनसमुच्चय ग्रंथ के टीकाकार सोमितलक ने अपनी लघुवृत्ति में मीमांसा दर्शन का वर्णन करते समय वेदान्त मत का संक्षेप में वर्णन किया है।[२] तर्करहस्यदीपिकाकार गुणरत्न ने भी अपनी

---

[१] नैयायिकमतादन्ये भेदं वैशेषिकैः सह। न मन्यते मते तेषां पञ्चैवास्तिकवादिनः॥ षड्दशर्नसंख्या तु पूर्यते तन्मते किल। लोकायतमतक्षेपे कथ्यते तेन तन्मतम्॥ हरिभद्रकृत षड्दशर्नसमुच्चय श्लोक - ७८, ७९

[२] जैमिनिशिष्याश्चैके उत्तरमीमांसावादिनः एके पूर्वमीमांसावादिनः । तत्रोत्तरमीमांसावादिनो वेदान्तिनस्ते.....। पृ. ६८

बृहद्वृत्ति में वेदान्त मत का उल्लेख करते हुए उनके कुटीचर, बहूदक, हंस और परमहंस इन चार भेगों का वर्णन किया है।[१]

हरिभद्र की आश्चर्यजनक बात यह है कि उन्होंने 'पातञ्जलयोग' का नाम तक नहीं लिया है। योगसूत्रकार पतंजिल का समय ईसा की द्वितीय शताब्दी के बाद का है, यह सिद्ध नहीं होता और लगभग यही समय योग-भाष्यकार व्यास का भी है। हरिभद्र ने सांख्यदर्शन का उल्लेख तो किया है परन्तु योगदर्शन का नहीं किया है; जबकि सूत्रकार और भाष्यकार दोनों उनके पहले हो चुके हैं। हरिभद्र ने षड्दर्शनसमुच्चय की ३४ वीं कारिका में सेश्वर एवं निरीश्वर सांख्य का उल्लेख किया है। शंकराचार्य ने अपने सर्वसिद्धान्त-संग्रह में सेश्वर सांख्य का अर्थ पातंजलयोग लिया है और उसका निरूपण वहाँ उनहत्तर कारिकाओं में किया है। त्रिवेन्द्रम से प्रकाशित एवं म. म. टी. गणपति शास्त्री द्वारा संपादित सवर्मत-संग्रह में भी सेश्वर-निरीश्वर सांख्य का निरूपण हुआ है और वहाँ भी सेश्वरसांख्य का अभिप्राय पातंजलयोग ही है। सर्वदर्शनकौमुदीकार माधवसरस्वती ने भी सेश्वरसांख्य को योगसांख्य कहा है।

इस प्रकार वैदिक परंपरानुगत आचार्यों ने सेश्वरसांख्य को योगदर्शन ही माना है; किन्तु इस विषय पर विचार करने वाले प्रायः सभी जैन आचार्य ने सेश्वर और निरीश्वर सांख्य का प्रायः भिन्न ही अर्थ लिया है। इन आचार्यों ने 'ईश्वर' शब्द को शिव या महेश्वर के अर्थ में रूढ़ माना है। हरिभद्रकृत षड्दर्शनसमुच्चय के लघुवृत्तिकार सोमितलक के शब्दों पर ध्यान देने से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है- '*केचित्सांख्या निरीश्वरा ईश्वरं देवतया न मन्यन्ते, केवलाध्यात्मवादिनः, केचित् पुनरीश्वरदेवता महेश्वरं स्वशासनाधिष्ठातारमाहुः।*'[२]

हरिभद्रकृत षड्दर्शनसमुच्चय के बृहद्वृत्तिकार गुणरत्नसूरि इसी कारिका की व्याख्या में सोमितलक के सदृश ही विचार को प्रकट किया है- '*केचित्सांख्या निर्गत ईश्वरो येभ्यस्ते निरीश्वराः*

---

[१] ये तूत्तरमीमांसावादिनः ते वेदान्तिनो ब्रह्माद्वैतमेव मन्यन्ते।..... ते च द्विजा एव भवन्नामधेयाश्चतुर्धाभिधीयन्ते- कुटीचर-बहूदक- हंस-परमहंसभेदात् । पृ. ४३१

[२] हरिभद्रकृत षड्दशर्नसमुच्चय की कारिका ३४ की वृत्ति।

केवलाध्यात्मैकमानिनः। केचिदीश्वरदेवताः, ईश्वरो देवता येषां ते तथा।[१] किन्तु इस कारिका के पूर्व सांख्यदर्शन के आचार्यों की वेशभूषा आदि की भूमिका देते हुये उन्होंने निरीश्वर का अर्थ विष्णु का आराधक तथा सेश्वर का अर्थ शिवाराधक किया है। उनके ही शब्द द्रष्टव्य हैं- *'सांख्याः केचिदीश्वरदेवाः अपरे च निरीश्वराः। ये च निरीश्वरास्तेषां नारायणो देवः तेषामाचार्या विष्णुप्रतिष्ठाकारकाश्चैतन्यप्रभृतिशब्दैरभिधीयन्ते'*।[२]

षड्दर्शनसमुच्चय का पहला श्लोक इस प्रकार है-

सद्दर्शनं जिनं नत्वा वीरं स्याद्वाददेशकम्।
सर्वदर्शनवाच्योऽर्थः संक्षेपेण निगद्यते॥[३]

अनुवाद- शोभन मतवाले, जितेन्द्रिय, स्याद्वाद[४] के उपदेशक, महावीर को प्रणाम करके सभी दर्शनों के प्रतिपाद्य विषय का संक्षेप में निरूपण किया जाता है। प्रस्तुत श्लोक में हरिभद्रसूरि ने भगवान महावीर को नमस्कार करके ग्रंथ के शुरुआत में किया जाने वाला मंगल किया है। जैन परंपरा के अनुसार आदिमंगल निर्विघ्नता से ग्रंथ पूर्ण होने के लिए, मध्यमंगल ग्रंथ की स्थिरता के लिए व अन्तिम मंगल शिष्यों में शास्त्र की परंपरा स्थिर करने के लिए किया जाता है।[५]

इस तरह प्रथम श्लोक में आदिमंगल, मध्य में जैनदर्शन विवेचन की शुरुआत में-

---

[१] तर्करहस्यदीपिका- ३४ वीं कारिका की व्याख्या।

[२] तर्करहस्यदीपिका- ३४ वीं कारिका की भूमिका।

[३] हरिभद्रकृत षड्दशर्नसमुच्चय- १

[४] 'स्याद्वाद' जैनदर्शन का एक प्रमुख सिद्धान्त है। प्रत्येक वाक्य में 'स्यात्' लगा होने से 'स्याद्वाद' नाम पड़ा। ये वाक्य सात हैं जो इस प्रकार हैं- १. स्यादिस्त २. स्यान्नास्ति ३. स्यादिस्त च नास्ति च ४. स्यादतक्तव्यम् ५. स्यादस्ति च अवक्तव्यम् ६. स्यान्नास्ति च अवक्तव्यम् ७. स्यादिस्त च नास्ति च अवक्तव्यम्। संख्या में सात होने से इसे 'सप्तभङ्गीनय' भी कहते हैं।

[५] तं मंगलमाईए मज्झे पज्जंतए य सत्थस्स। पढमं सत्थस्साविग्घपारगमणाए निद्दिट्ठं॥ तस्सेवाविग्घत्थं मिज्झमयं अंतिमं च तस्सेव। अवोच्छित्तिनिमित्तं सिस्सपसिस्साइवंसस्स॥ विशेषा. गा. १३-१४
पढमे मंगलवयणे सिस्सा सत्थस्स पारगा होंति। मिज्झमे णिव्वग्घं विज्जा विज्जाफलं चरिमे॥ ति. प. १.१९
मंगलं सुत्तस्स आदीए मज्झे अवसाणे च वत्तव्वं उक्तं च- आदीवसाणमज्झे पण्णत्तं मंगलं जिणिंदेहिं।
तो कयमंगलविणयो वि णमोसुत्तं पवक्खामि॥ धवला पृ. ३९

'जिनेन्द्रो देवता तत्र रागद्वेषविवर्जितः'।[१]

इस श्लोक के द्वारा मध्यमंगल तथा-

'अभिधेयतात्पर्यार्थः पर्यालोच्यः सुबुद्धिभिः।'[२]

इस श्लोक के 'सुबुद्धि' शब्द के द्वारा अन्तिम मंगल किया है।

हरिभद्र के षड्दर्शनसमुच्चय ग्रंथ के ऊपर लिखी गई 'तर्करहस्यदीपिका' टीका में गुणरत्न जैन परंपरा के मंगल में अपेक्षित ऐसे चार 'अतिशय' प्रथम श्लोक के भाष्य में दिखलाते हैं। वे इस प्रकार हैं- अपायापगमातिशय, ज्ञानातिशय, पूजातिशय और वागतिशय। इन चार अतिशयों में परस्पर कार्यकारणभाव स्पष्ट करते हुए गुणरत्नसूरि कहते हैं- 'रागद्वेषादि समस्त आन्तरिक शत्रुओं को जीतकर महावीर सर्वज्ञ बन गए है। उनकी सर्वज्ञता से वे सद्भूतार्थवादी है और सद्भूतार्थवदी होने से वे त्रिलोकपूज्य हैं।[३]

मुख्य ग्रंथ के- 'सभी मूल दर्शनों में प्रतिपादित देव, तत्त्व और प्रमाण इनका स्वरूप संक्षेप से कहा जाता है।' इस वाक्य के सामर्थ्य से ग्रंथ का संबंध और प्रयोजन समझता है। यहाँ सभी दर्शनों में प्रतिपादित देवता, तत्त्व इत्यादि का ज्ञान उपेय अर्थात् प्राप्तव्य है और यह ग्रंथ उस ज्ञान का साधन होने से उपाय है। इसिलए यहाँ उपायोपेय संबंध सूचित होता है।

इस ग्रंथ का प्रयोजन दो प्रकार का है- एक ग्रंथकर्ता का और दूसरा श्रोता का। ये दोनों प्रयोजन साक्षात् और परंपरा ऐसे दो प्रकार के हैं। ग्रंथकर्ता का साक्षात् प्रयोजन है- तत्त्वों का ज्ञान देकर प्राणिमात्र पर उपकार करना। ग्रंथश्रोता का साक्षात् प्रयोजन है- सभी दर्शनों में प्रतिपादित देवता, तत्त्व, प्रमाण इत्यादि का ज्ञान करना। दोनों का परंपरा से प्रयोजन है- दर्शनों में हेयोपादेयता का विवेक प्राप्त करके हेय का परित्याग और उपादेयता का ग्रहण करके अनन्तज्ञानादि चतुष्टयरूप सिद्धि प्राप्त करना।[४] अनन्तर गुणरत्न पूवर्पक्ष तथा उत्तरपक्ष के माध्यम से की गई चर्चा के द्वारा स्पष्ट करते हैं कि

---

[१] हरिभद्रकृत षड्दशर्नसमुच्चय- ४५

[२] हरिभद्रकृत षड्दशर्नसमुच्चय- ८७

[३] यत एव निःशेषदोषशत्रुजेता तत एव सर्वज्ञ.....। तर्करहस्यदीपिका पृ. ५

[४] एतेन साक्षादभिधेयम्.....। तर्करहस्यदीपिका पृ. ६

अन्य सभी दर्शन हेय हैं और जैनदर्शन उपादेय है।

मूल ग्रंथ के 'नत्वावीरं' शब्द का गुणरत्न के अनुसार नत्वा अवीरम् ऐसा पदच्छेद करना चाहिए। उन्होंने अवीर का आ+अ+उ+ईर इस प्रकार पदच्छेद किया है। आ=ब्रह्मा, अ=विष्णु, उ=महादेव। आ, अ तथा उ तीनों स्वर मिलाकर संधि के नियम के अनुसार ओ बन जाता है। जो इस ओ को अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, महेश को ईरयित अर्थात् उनके मत का निराकरण कर प्रेरणा देता है , वह अवीर है संक्षेप में- सृष्टि, स्थिति और प्रलय के कर्ता ब्रह्मा, विष्णु और महेश को मानने वाले दर्शनों का निरास करने वाला अवीर है। इस तरह का वर्णन अन्य टीकाओं में देखने नहीं मिलता।[१]

सोमितलक ने अपनी लघुवृत्ति में केवल चार अतिशयों का वर्णन किया है।[२]

न्यायदर्शन का वर्णन करते समय हरिभद्र कहते हैं-

नैयायिकमतस्येतः कथ्यमानो निशम्यताम्॥[३]
आक्षपादमते देवः सृष्टिसंहारकृच्छिवः।
विभुर्नित्यैकसर्वज्ञो नित्यबुद्धिसमाश्रयः॥[४]

अनुवाद- यहाँ से नैयायिकों के मत को सुनिये। न्यायदर्शन में उत्पत्ति एवं विनाश के कर्त्ता, सर्वव्यापक, नित्य, अद्वितीय, सर्वज्ञ तथा शाश्वत बुद्धि के आधार शिव (अधिष्ठाता) देव मान्य है।

इस श्लोक के द्वारा हरिभद्र ने नैयायिक-शैव मत के विवेचन का प्रारंभ किया है। इस मत को योग के नाम से भी जाना जाता है।[५] न्यायदर्शन के अनुयायी हाथ में दण्ड और कमण्डलु रखने करने वाले, शरीर पर कम्बल ओढ़ने वाले, जटा धारण करने वाले, शरीर पर भस्म लगाने वाले, यज्ञोपवीत (जनेऊ) पहनने वाले, नीरस भोजन करने वाले, प्रायः जंगल में रहने वाले और कन्दमूल तथा फलों का भक्षण करने वाले होते हैं। इनमें से कुछ स्त्रियों के साथ रहने वाले तथा कुछ स्त्रियों के बिना रहने वाले होते हैं। इन दोनों में से स्त्रियों के बिना रहने वाले उत्तम समझे जाते हैं। ये पंचाग्नितप को करते हैं। इनमें से

---

[१] तर्करहस्यदीपिका पृ. ८

[२] अत्रादिमार्द्धेभगवतोऽतिशयचतुष्टयमाक्षिप्तम्। लघुवृत्ति पृ. २

[३] हरिभद्रकृत षड्दर्शनसमुच्चय- १२

[४]हरिभद्रकृत षड्दर्शनसमुच्चय- १३

[५] अथादौ नैयायिकानां यौगापराभिधानानां .....। गुणरत्नसूरि टीका पृ. ७६

उत्तम संयम की अवस्था को प्राप्त करने वाले नग्न अवस्था में विहार करते हैं। ये प्रातःकाल में दन्तधावन तथा शौचादि क्रिया करके शिव का ध्यान करते हैं और तीन बार शरीर पर भस्म लगाते हैं। इनके यजमान नमस्कार करते समय इन्हें हाथ जोड़कर 'ॐ नमः शिवाय' कहते हैं। गुरु भी जवाब में 'शिवाय नमः' कहते हैं।

नैयायिक ईश्वर को देव मानते हैं। ईश्वर सर्वज्ञ है तथा जगत् की सृष्टि तथा प्रलय करने में समर्थ है, ऐसी उनकी धारणा है। उस ईश्वर के नकुली, शोष्यकौशिक, गार्ग्य आदि अठारह अवतार हुए हैं। इनके सब तीर्थों में भरट पूजा करने वाले होते हैं। नैयायिक और वैशेषिक के प्रायः तुल्य ही मत हैं। इनके तपस्वियों के शैव, पाशुपत, महाव्रतधर और कालमुख ऐसे चार मुख्य भेद हैं। इन भरट आदि के व्रत ग्रहण में ब्राह्मण आदि होने की कोई आवश्यकता नहीं होती है। जिसकी शिव में भक्ति हो, वह व्रत धारण करके भरट आदि हो सकता है। नैयायिक सदा शिव की भक्ति करते हैं, अतः शास्त्रों में इन्हें 'शैव' कहा जाता है तथा वैशेषिकों को 'पाशुपत' कहा जाता है।[१] इस तरह न्यायदर्शन का सामान्य परिचय गुणरत्न ने दिया है। ऐसा वर्णन सोमतिलक के लघुवृत्ति में दिखाई नहीं देता।

हरिभद्र ने वैशेषिकों के तत्त्वनिरूपण के समय उसके छह तत्त्वों का तथा 25 गुणों का निरूपण किया है। इसका कारण यह हो सकता है कि उस समय वैशेषिक दर्शन के आचार्य में अभाव को न मानने वाले आचार्य प्रभावी हो। टीकाकार गुणरत्नसूरि तर्करहस्यदीपिका में कुछ आचार्य अभाव को सातवा पदार्थ मानते हैं, ऐसा कहते हैं।[२] कुछ आचार्यों के अनुसार गुणों की संख्या चोबीस ही है, ऐसा भी वे स्पष्ट करते हैं।[३] इस तरह कहा जाता है कि चार्वाकदर्शन का स्पष्ट उल्लेख सर्वप्रथम हरिभद्र के षड्दर्शनसमुच्चय से निदर्शित होता है। हरिभद्र ने वर्णन करते समय कहते है-

एतावानेव लोकोऽयं यावानिन्द्रियगोचरः।
भद्रे ! वृकपदं पश्य यद् वदन्त्यबहुश्रुताः[४] ॥[५]

---

[१] तेन नैयायिकशासनं शैवमाख्यायते, वैशेषिकदर्शनं च पाशुपतमिति। तर्करहस्यदीपिका पृ. ७८

[२] केचित्त्वभावं सप्तमं पदार्थमाहुः। तर्करहस्यदीपिका पृ. ४०७

[३] 'वेगः पृथिव्यप्तेजोवायुमनःसु ..... तन्मते चतुर्विंशतिरेव गुणाः।' तर्करहस्यदीपिका पृ. ४१९

[४] 'यद्वद्वन्ति बहिश्रुताः' इति पाठान्तरम्।

[५] हरिभद्रकृत षड्दर्शनसमुच्चय- ८१

अनुवाद- जितना इन्द्रियों से ग्रहण किया जाता है, उतना ही यह जगत् है। भद्रे ! भेड़िये के पैरों के निशान देख, ऐसा मूर्ख लोग बोलते हैं।

यह प्रत्यक्ष दिखाई देने वाला मनुष्यलोक स्पर्शन, रसन, प्राण, चक्षु और श्रोत्र इन पाँच इन्द्रियों के द्वारा ही विषय होने वाले पदार्थ तक सीमित है। इनसे परे कोई आत्मा, पुण्य, पाप, उनका फल, स्वर्ग, नरक आदि अतीन्द्रिय वस्तु नहीं है; क्योंकि इनका प्रत्यक्ष नहीं होता है। श्लोक की द्वितीय पंक्ति में आया हुआ 'वृकपद' शब्द, किस तरह तथाकथिक पण्डित लोगों को ठगते हैं, इसका द्योतक है। इस शब्द से स्वर्ग आदि सब इस भेड़िये के पैर के निशान के समान है, यह कहा गया है। इस उदाहरण को स्पष्ट करते हुए गुणरत्न ने तर्करहस्यदीपिका में कहा है- "एक चार्वाकवादी की पत्नी आस्तिक थी। वह नास्तिकवादी चार्वाक अपनी पत्नी को नास्तिक युक्तियों से धार्मिक कार्य और अनुमान आदि की व्यर्थता समझाया करता था। परन्तु उसके स्त्री पर उसका कोई असर नहीं होता था। यह देखकर वह चार्वाकवादी रात के अन्तिम प्रहर में अपने पत्नी को शहर के बाहर ले गया। वहाँ उसने नगर के दरवाजे से लेकर चौराहे तक सारे राजमार्ग में अपने अंगुठे और पास वाली दो उंगलियों से बड़ी कुशलतापूर्वक भेड़िये के पैरों के निशान बना दिये। प्रातःकाल होने पर पैरों के निशान देखकर लोग इकट्ठे हो गए। इसी समय नगर के बहुश्रुत पण्डित भी वहाँ पहुँचे। पण्डितों ने अपनी बुद्धि से विचार करके उपस्थित लोंगों से कहा कि- "भाइयों ! रात में कोई भेड़िया जंगल से नगर में अवश्य आया है, यदि नहीं आया होता तो उसके पैरों के निशान यहाँ कहाँ से आते?" तब पास में ही खड़ा हुआ चार्वाक् पण्डितों की उन बातचीत की ओर अपनी पत्नी का ध्यान खींचता हुआ बोला- "हे प्रिये ! इन भेड़िये के पैरों के निशान देखो।"[१]

इस प्रकार संक्षेप में अपने अनुयायियों को अन्य दर्शनों की रूपरेखा का ज्ञान हो, इस उद्देश्य से हरिभद्र ने अपना ग्रंथ लिखा है। इस ग्रंथ में हरिभद्र ने किसी भी दर्शन का खण्डन या मण्डन नहीं किया है। टीकाकार गुणरत्नसूरि ने तर्करहस्यदीपिका में प्रत्येक दर्शन का वर्णन करते समय तत् तत् दर्शनों के ग्रंथों के प्रचुर मात्रा में उद्धरण दिए हैं लेकिन वे अपनी टीका से जैनदर्शन उपादेय है और अन्य सभी दर्शन हेय है, ऐसा प्रदर्शित करते हैं। सोमतिलक ने अपनी लघुवृत्ति में किसी दर्शन के खंडन - मंडन की चर्चा नहीं की है।

---

[१] किश्चित्पुरुषो नास्तिकमतवासनावासितान्तःकरणो निजां जायाम्..... तर्करहस्यदीपिका पृ. ४५४